एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 02, अंक: 03 (मई-जून, 2022)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

धान के प्रमुख रोग व उनका प्रबंधन

(*विकास कुमार)
पादप व्याधि विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
* vikashsihag029@gmail.com

धान एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है, जो पूरे विश्व की आधी से ज्यादा आबादी को भोजन प्रदान करती है। भारत में धान की खेती लगभग 450 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है। इसका विस्तार तमिलनाडु के समुद्र तट से लेकर कश्मीर की पहाड़ियों तक तथा गुजरात से अरुणाचल प्रदेश तक फैला हुआ है। छोटी होती जोत एवं कृषि श्रमिकों की अनुपलब्धता व जैविक-अजैविक कारकों के कारण धान की उत्पादकता कम होती जा रही है। धान में कई प्रकार के जैविक रोग लगते है, जो निम्नलिखित है।

झौंका रोग

एक फफूंदजनित रोग है और इसका कारक मैग्नीपारथी गराइसिया है। इस रोग के लक्षण पौधे के सभी वायवीय भागों पर दिखाई देते हैं। परंतु सामान्य रूप से पत्तियां और पुष्पगुच्छ की ग्रीवा इस रोग से अधिक प्रभावित होती हैं। प्रारंभिक लक्षण नर्सरी में पौध की पत्तियों पर नाव जैसे अथवा आंख जैसे धब्बे के रूप में प्रकट होते हैं। ये धब्बे 0.5 सें.मी. से लेकर कई सें.मी. तक लंबे होते हैं। इनके किनारे भूरे लाल रंग के तथा मध्य वाला भाग श्वेत धूसर अथवा राख जैसे रंग का होता है। पौधे की रोपाई के पश्चात लक्षण खेत में पौधों पर कई स्थानों पर दिखाई देते हैं। ये कल्ले फूटने के समय सम्पूर्ण फसल पर फैल जाते हैं। बाद में धब्बे आपस में मिलकर पौधे के सभी हरे भागों को ढंक लेते हैं। जिससे फसल जली हुई प्रतीत होती है।

रोग के लक्षण स्तंभ संधि/स्तंभ नोड और तुशनिपत्रा पर भी दिखाई देते हैं। इन पर भूरे से काले धब्बे बनते हैं। तने पर यह काला रंग 1 या 2 सें.मी. तक दोनों ओर फैल सकता है। बाली के बाहर निकलने पर पुष्पगुच्छ ग्रीवा में संक्रमण होता है। ग्रीवा का रोगी भाग सिकुड़कर काला हो जाता है। इस भाग को धूसर कवक जाल ढक लेता है। यह अवस्था ग्रीवा संक्रमण अथवा ग्रीवा विगलन के नाम से जानी जाती है। यदि इस प्रकार का संक्रमण आरंभ में ही हो जाता है, तब बाली सीधी निकलती है। इसमें दाने आंशिक अथवा पूर्णरूपेण नहीं बनते हैं, परंतु जब यह संक्रमण बाली में दाने बनने के बाद होता है, तो ग्रीवा ऊतकों की मृत्यु के कारण बाली टूटकर नीचे लटक जाती है। ऐसी बालियों को खेत में दूर से देखा जा सकता है तथा रोग की इस अवस्था में उत्पादन की अधिकतम हानि होती है।

रोग नियंत्रण

- बीज का चयन रोगरहित फसल से करना चाहिए।
- फसल की कटाई के बाद खेत में रोगी पौध अवशेषों एवं ठूठों इत्यादि को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।
- उपचारित बीज ही बोना चाहिए। इसके लिए थीरम 75 प्रतिशत की 2.5 ग्राम अथवा कार्बेडाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी की 2.0 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करना चाहिए।

इस रोग के नियंत्रण के लिए निम्न में से किसी एक रसायन को प्रति हैक्टर 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिएः कार्बेंडाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी-500 ग्राम, ट्राइसाइक्लाजोल 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी-300 ग्राम, हेक्साकोनाजोल 5.0 प्रतिशत ईसी-1 लीटर, प्रोपिकोनाजोल 25 प्रतिशत ईसी-500 मि.ली.।

पर्ण झुलसा अथवा शीथ झुलसा

यह फफूंदीजनित रोग है, जिसका कारक राइजोक्टोनिया सोलेनाई है। पूर्व में इस रोग को अधिक महत्व का नहीं माना जाता था। अधिक पैदावार देने वाली एवं अधिक उर्वरक उपभोग करने वाली प्रजातियों के विकास के साथ अब यह रोग धान के रोगों में अपना प्रमुख स्थान रखता है, जो कि व्यापकतानुसार उपज में 50 प्रतिशत तक नुकसान करता है।

लक्षण

इस रोग का संक्रमण नर्सरी से ही दिखना आरंभ हो जाता है, जिससे पौधे नीचे से सड़ने लगते हैं। मुख्य खेत में ये लक्षण कल्ले बनने की अंतिम अवस्था में प्रकट होते हैं। लीफ शीथ पर जल सतह के ऊपर से धब्बे बनने शुरू होते हैं। इन धब्बों की आकृति अनियमित (वृताकार से दीर्घ वृताकार एवं आयताकार) तथा किनारा गहरा भूरा व बीच का भाग हल्के रंग का होता है। पत्तियों पर घेरेदार धब्बे बनते हैं, जिनका आकार 3×1 सें.मी. होता है। अनुकूल परिस्थितियों में कई छोटे-छोटे धब्बे मिलकर बड़ा धब्बा बनाते हैं। इसके कारण शीथ, तना, ध्वजा पत्ती पूर्ण रूप से ग्रसित हो जाती है। पौधे मर जाते हैं। खेतों में यह रोग अगस्त एवं सितंबर में अधिक तीव्र दिखता है। संक्रमित पौधों में बाली कम निकलती है तथा दाने भी नहीं बनते हैं। संक्रमण के एक सप्ताह बाद कवक (फफूंदी) तन्तु पर स्केलेरोशिया दिखाई देता है, जो आसानी से अलग हो जाता है और ये भूमि में पड़े रहते हैं। अगली फसल में, ये प्राथमिक संक्रमण कर देते हैं।

रोगचक्र

रोगकारक मृदा में स्केलेरोशिया के रूप में या पौधों के ठूंठ पर रहता है। यह कृषि क्रियाओं द्वारा एक से दूसरे स्थान पर पहुंचता है। यह फफूंदी विभिन्न प्रकार के खरपतवारों पर उगती है एवं प्राथमिक संक्रमण के लिए उत्तरदायी है। रोग के फैलाव के लिए सापेक्ष आदर्ता वर्षा तथा तापमान मुख्य भूमिका निभाते हैं। रोग के क्षैतिज फैलाव का सापेक्ष आदर्ता से जबकि ऊर्ध्वाधर फैलाव का वर्षा की मात्रा से धनात्मक संबंध पाया गया है। 23^0 से 34^0 सेल्सियस तापमान संक्रमण के लिए अनुकूल होता है।

रोग प्रबंधन

बीज उपचार

- धान के बीज को स्यूडोमोनास फ्लारेसेन्स की 10 ग्राम अथवा ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें।

रासायनिक उपचार

- रोग के लक्षण खड़ी फसल में दिखाई देने पर निम्नलिखित किसी एक रसायन का प्रयोग करें। इनका 10 से 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए। कार्बेन्डाजिम 1.0 कि.ग्रा. या प्रोपिकोनाजोल 500 मि.ली. या हेक्साकोनाजोल 1.0 लीटर मात्रा का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

बचाव

- खेतों से फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- प्रक्षेत्रों पर फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। साथ ही साथ मेड़ों की सफाई अवश्य करें।
- संतुलित उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।
- नाइटोजन उर्वरकों को दो या तीन बार में देना चाहिए।

बचाव के उपाय

- धान की रोगरोधी प्रजातियों का चयन करें।
- शुद्ध एवं असंक्रमित बीजों का ही प्रयोग करें।
- मुख्य खेत वं मेड़ों को खरपतवार से मुक्त रखें।

भूरा धब्बा रोग

मुख्य रूप से यह रोग पत्तियों, पर्णच्छंद तथा दानों पर आक्रमण करता है। पत्तियों पर गहरे कत्थई रंग के गोल अथवा अंडाकार धब्बे बन जाते हैं। इन धब्बों के चारों तरफ पीला घेरा बन जाता है, मुख्य भाग पीलापन लिए हुए कत्थई रंग का होता है तथा पत्तियां झुलस जाती हैं। दानों पर भी भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। इस रोग का आक्रमण पौध अवस्था से दाने बनने की अवस्था तक होता है।

नियंत्रण

इस रोग की रोकथाम के लिए मैंकोजेब की 2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करते हैं।

मिथ्या कंडुआ

यह फफूंदजनित रोग है। पूर्व में इस रोग को ज्यादा महत्व का नहीं माना जाता था और इसे किसान के लिए शुभ संकेत माना जाता था। अधिक पैदावार देने वाली एवं अधिक उर्वरक उपयोग करने वाली प्रजातियों के विकास तथा जलवायु परिवर्तन से अब यह रोग धान रोगों में अपना प्रमुख स्थान रखता है, जोकि व्यापकतानुसार उपज में 0.2-44.5 प्रतिशत तक नुकसान करता है।

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों की बालियों में केवल दानों पर ही दिखाई देते हैं। रोगजनक के फलनकायों के विकसित हो जाने के कारण बाली में कहीं-कहीं बिखरे हुए दाने बड़े मखमल के समान चिकने हरे समूह में बदल जाते हैं। ये हरे समूह वास्तव में कवक के स्क्लेरोशिपमी पिंड होते हैं, जो अनियमित रूप में गोल अंडाकार होते हैं। कभी-कभी इनका व्यास सामान्य से दोगुने से भी अधिक हो जाता है तथा नाप में ये 0.8-1.0 सें.मी. के होते हैं। इनका रंग बाहरी ओर नारंगी पीला एवं मध्य में लगभग सफेद होता है, बाली में कुछ ही दाने प्रभावित होते हैं।

नियंत्रण

इस रोग के नियंत्रण के लिए प्रोपिकोनाजोल 25 प्रतिशत ई.सी.-500 मि.ली. अथवा नाटिबों 75 डब्ल्यूजी-300 मि.ली. 500 लीटर पानी में 50 प्रतिशत पीई अवस्था पर छिड़काव करना चाहिए।

जीवाणुधारी झुलसा

इस रोग का रोगजनक जीवाणु है, इसका नाम जैन्थेमोनास ओराइजी पी.वी. ओराइजीकोला है। इस रोग का प्रमुख लक्षण पौधे के ऊपरी हरे भागों पर दिखाई देता है, जिसमें पत्तियों पर कत्थई रंग की लंबी-लंबी (1-10 सें.मी. तक) धारियां नसों के बीच बन जाती हैं। इसमें पीले रंग का जीवाणु स्राव पत्ती पर दिखाई देता है। ये धारियां एक-दूसरे से सटकर पूरी पत्ती पर दिखाई देती हैं। फलस्वरूप पत्ती सूख जाती है। तीव्र संक्रमण में शीथ एवं बीज भी प्रभावित होता है, परंतु ये लक्षण कम स्पष्ट होते हैं।

रोगचक्र

प्राथमिक संक्रमण बीज के अंदर एवं सतह पर चिपके जीवाणुओं द्वारा होता है। जीवाणु मृदा रोगी पोधो, खरपतवारो एवं ठूंठ आदि पर भी कई महीनों तक रहते हैं। रोग का संक्रमण खेत में पौधे की रोगी पत्तियों से स्वस्थ पत्तियों पर हो जाता है। ये जीवाणु कीट, वायु एवं स्पर्श द्वारा पूरे खेत में फैल जाते हैं। जीवाणु पत्तियों के रंध्रों द्वारा अथवा घावों द्वारा भीतर प्रवेश करके रोग उत्पन्न कर देते हैं।

जीवाणु झुलसा

यह जीवाणुजनित रोग है, जिसके कारक जीवाणु का नाम जैन्थोमोनास ओराइजी पी.वी. ओराइजी है। रोग के लक्षण धान के पौधे में दो अवस्थाओं में दिखाई देते हैं, पर्ण झुलसा (लीपफ ब्लाइट) एवं विल्ट अवस्था (करेसेक) जिसमें पर्ण झुलसा अधिक व्यापक है। इनके लक्षण धान में नर्सरी अवस्था से लेकर बालियां निकलते समय तक कभी भी दिखाई दे सकते हैं। सामान्यतः रोग के लक्षण पौधों में कल्ले बनने की अंतिम अवस्था से बाल निकलते समय अधिक स्पष्ट होते हैं तथा यह अधिक नुकसान भी पहुंचाता है। इस रोग में पत्ती के एक अथवा दोनों किनारों पर एवं मध्य शिरा के साथ जलासिक्त पारभासक धब्बे बनने आरंभ होते हैं। धीरे-धीरे ये धब्बे बढ़कर धारियों का रूप ले लेते हैं, जो पीले से सफेद रंग के दिखाई देती हैं। इन धारियों का किनारा लहरदार होता है। अनुकूल मौसम (अधिक नमी) में ये धब्बे बीच की तरफ तीव्र गति से बढ़कर संपूर्ण पत्ती को प्रभावित करते हैं, जिससे पत्तियां मुड़ जाती हैं। ग्रसित भाग से जीवाणुयुक्त स्राव बूंदों के रूप में निकलता है। यह स्राव सूखकर कठोर हो जाता है और पीले कणों अथवा पपड़ी के रूप में दिखाई देता है। पौधों के संवहनी बंडल जीवाणु द्वारा भर जाते हैं और पौधों की मृत्यु हो जाती है। उत्तर भारत में इस रोग के लक्षण धान के खेत में अगस्त एवं सितंबर में दिखाई देते हैं। ग्रसित पौधों की बालियां और दाने कम बनते हैं। विल्ट अथवा करेसेक अवस्था में ग्रसित पौधों की पत्तियां सिकुड़कर मुड़ जाती हैं, जिसके पफलस्वरूप पूरी पत्ती मुरझा जाती है तथा कभी-कभी तनाबेधक कीट द्वारा ग्रसित पौधे के समान लक्षण दिखाई देते हैं। ऊपर खींचने पर आसानी से शीथ बाहर नहीं निकलती है, जो विल्ट अवस्था संक्रमण का द्योतक है।

रोग प्रबंधन

धान के जीवाणजुनित रोगों की रोकथाम निम्नलिखित विधियों द्वारा की जा सकती है:

बीज उपचार

बीजों में संक्रमण निम्न उपचारों से रोका जा सकता हैः

रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग करना चाहिए।

बीजों को 12 घंटे तक 0.25 प्रतिशत एग्रीमाइसीन के जलीय घोल में एवं 0.05 प्रतिशत सेरेसान के घोल से उपचारित करके फिर बीजों को 30 मिनट के लिए 52^0-54^0 सेल्सियस तापमान वाले जल में रखने से सभी जीवाणु मर जाते हैं।

बीजों को 8 घंटे तक सेरेसान (0.1 प्रतिशत) और स्ट्रेप्टोसायक्लिन (0.3 ग्राम) के 2.5 लीटर जल से उपचारित करना चाहिए।

बीजों को जैविक पदार्थों जैसे-स्यडूामोनास फ्रलोरेसेन्स 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुआई करनी चाहिए।

पौध उपचार

रोपाई से पूर्व एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए एक कि.ग्रा. स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स को आवश्यकतानुसार पानी के घोल में पौधे की जड़ को एक घंटे तक डुबोकर उपचारित करके लगाएं। एक कि.ग्रा. स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स को 50 कि.ग्रा. रेत या गोबर की खाद में मिलाकर एक एकड़ खेत में रोपाई से पूर्व फैला दें। पौधों को रोपाई से पूर्व 0.5 प्रतिशत ब्लाइटॉक्स-50 के घोल से उपचारित करना चाहिए।

खेत में छिड़काव

खेत में रोग दिखाई देने पर स्ट्रेप्टोसायक्लिन 15 ग्राम + 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार दूसरा छिड़काव 10-15 दिनों बाद करें।

सफेदा रोग

यह लौह तत्व की कमी के कारण नर्सरी में अधिक लगता है। नई पत्ती कागज के समान सफेद रंग की निकलती है।

इसके नियंत्रण के लिए 5 कि.ग्रा. फेरस सल्फेट को 20 कि.ग्रा. यूरिया अथवा 2.50 कि.ग्रा. बुझे हुए चूने को प्रति हैक्टर लगभग 1000 लीटर पानी में घोल का छिड़काव करना चाहिए।

खैरा रोग

यह रोग जिंक की कमी के कारण होता है। इस रोग में पत्तियां पीली पड़ जाती हैं जिस पर बाद में कत्थई रंग के धब्बे बन जाते हैं।

इसके नियंत्रण के लिए जिंक सल्फेट 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई/रोपाई से पूर्व आखिरी जुताई पर मृदा में मिलाकर देने से खैरा रोग का प्रकोप नहीं होता है। खड़ी फसल में लक्षण दिखाई पड़ने पर 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट, 20 कि.ग्रा. यूरिया अथवा 2.50 कि.ग्रा. बुझे हुए चूने को प्रति हैक्टर 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करके खैरा रोग को नियंत्रित करते हैं।